अध्याय : दो

यथार्थवादी उपन्यास और नागार्जुन

उपन्यास कथा साहित्य की एक विधा है जिसमें मानव जीवन की जटिलतम स्थितियों, अनुभूतियों, भावनाओं तथा संवेदनाओं के व्यापक जीवन का जो चित्र प्रकट होता है, वह पाठक को वास्तविक जीवन का प्रतिबिम्ब सा प्रतीत होता है । अंग्रेज़ी के "नावेल" शब्द के अर्थ में हिन्दी में "उपन्यास" शब्द प्रचलित है । उसके पहले संस्कृत में उपन्यास शब्द मिलता है । इसकी दो प्रकार से व्याख्या होती है । "उपन्यास: प्रसादनम्" अर्थात् प्रसन्न करने को उपन्यास कहते हैं ।[1] दूसरी व्याख्या "उपपत्ति कृतो ह्यर्थ उपन्यास: प्रकीर्तित: ?" अर्थात किसी अर्थ को युक्तियुक्त रूप में उपस्थित करना उपन्यास कहलाता है । "उपन्यास का शब्दार्थ है सामने रखना ।"[2] मराठी भाषा में अंग्रेजी शब्द के आधार पर "नवलकथा" शब्द मिलता है । मराठी में उपन्यास को कादम्बरी भी कहते हैं ।

उपन्यास जीवन का यथार्थ दर्पण ही है । डी.एच.लारेन्स के अनुसार "उपन्यास जीवन का एक श्रेष्ठ ग्रंथ है ।"[3] हेनरी जेम्स उपन्यास

---

1. साहित्य दर्पण - 6,9
2. काव्य के रूप - गुलाबराय - पृ. 168
3. The Novel is one of the bright book of life - Philip stevick - The Theory of Novel - P.406

के अस्तित्व का कारण "उसके जीवन का प्रतिनिधित्व करने की प्रवृत्ति को मानते हैं ।"[1] फिलिप स्टेविक ने लिखा है कि "अन्य विधाओं की अपेक्षा उपन्यास मानव के विस्तृत, परिष्कृत एवं स्थिर प्रतीकों को समेटने में समर्थ है और इसी कारण हर व्यक्ति उपन्यास पढ़ता है ।"[2]

उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द ने लिखा है "मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ । मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है ।"[3] हिन्दी साहित्य कोश में उपन्यास का अर्थ इस प्रकार लिखा गया है कि "वह वस्तु या कृति जिसको पढ़कर ऐसा लगे कि यह हमारी ही है, इसमें हमारे ही जीवन का प्रतिबिम्ब है, इसमें हमारी ही कथा हमारी ही भाषा में कही गयी है । आधुनिक युग में जिस साहित्य विशेष के लिए इस शब्द का प्रयोग किया जाता है उसकी प्रकृति को स्पष्ट करने में यह शब्द सर्वथा समर्थ है ।"[4]

---

1. The only reason for the existence of a novel is that it does attempt to represent life - Henry James - The Art of Fiction.
2. The Novel, more than any other genre is capable of containing large, developed consistent images of people and this is one of the reasons that any one reads a novel- Philip Stevick - The Theory of Novel - P-2
3. साहित्य का उद्देश्य - प्रेमचन्द - पृ. 94
4. हिन्दी साहित्यकोश - धीरेन्द्र वर्मा (संपादक) - पृ. 153

उपन्यास जीवन है और इसी जीवन के लिए केवल कुछ ही परिभाषायें समीचीन नहीं लगता । उस में एक दिन को, एक घंटे की, एक युग की, एक व्यक्ति की, एक परिवार या समाज की कथा कही जा सकती है ।

"उपन्यास पूँजीवादी सभ्यता की अभिनव भेंट है ।" जैसा कि पाश्चात्य विद्वान राल्फ फॉक्स ने लिखा है ।[1] उपन्यास को आधुनिक युग की देन मानते हुए भी रिचर्ड चर्च के समान हम स्वीकार करेंगे कि "उपन्यास एक ऐसा पौधा है जिसकी जड़ें शताब्दियों से दृढ़ रूप से फैली हुई हैं और जिसे एक सहजता से उखाड़कर प्रयोग शाला की मेज़ पर सूक्ष्म निरीक्षण यंत्र के तले रख नहीं सकते । हाँ, उसके आस पास की भूमि को खोद सकते हैं और फिर उसके पास ही की मिट्टी से उसके उत्पत्तिपरक तथा सजातीय तत्वों के आधार पर कुछ निष्कर्ष प्राप्त कर सकते हैं ।"[2]

---

1. Novel is the most important gift of bourgeois or capitalist civilization to the world's imaginative culture - Rolph Fox - The Novel and the people - P.53
2. The English novel is a sturdy plant whose tap-root plunges deep through the centuries. We cannot pluck it up to examine it with microscopes. But we can dig around a pit without fear of killing the tree and draw up from the subsoil some evidence of origins-mutations - Richard Church - The Growth of the English Novel - P.1

इस कथन के आधार पर उपन्यास को आधुनिक युग की देन मानते हुए भी उसकी जड़ों परीक्षण करके काव्य से उपन्यास के जन्म को सिद्ध किया जा सकता है ।

हिन्दी उपन्यास पश्चिम की देन है । पश्चिम में उपन्यास विधा का जन्म काव्य से माना जाता है । बेकर के अनुसार "उपन्यास का उदय काव्य से हुआ है ।"[1]

यथार्थ और जीवन

उपन्यास वर्तमान जीवन तथा सभ्यता के विविध सत्यों को कथा के माध्यम से प्रस्तुत करता है । "वह केवल जिन्दगी का चित्रण मात्र नहीं करता वरन् जीवन के बारे में बताता है । वह जीवन में गठन की विद्यमानता और उसके महत्व की स्थापना भी करता है ।"[2] वह एक विशिष्ट

---

1. Prose Fiction had its rise in Poetry - Baker - The History of English Novel - P. 288-289
2. Good Novel does not simple convey life, it says something about life. It reveals some kind of pattern in life. It brings significance - Arnold Kettle - An introduction to the English Novel - Introductory- P.13

अर्थ में गरिमा से युक्त होता है, जिसका प्रभाव केवल सामयिक ही नहीं, अपितु युगों तक विद्यमान रहता है ।[1]

जीवन्त उपन्यास युग की देन है । प्रत्येक युग में जीवन के आदर्श स्थापित होते हैं । अत: रचना के शाश्वत प्रभाव के लिए यह आवश्यक होता है कि वह युग मूल्यों के संक्रमण को किस सीमा तक गतिशील कर पाती है ।

डा. रघुवंश का विचार है कि "किसी भी युग का उच्चतम और क्लासिकी साहित्य वही होता है, जो उस युग के मूल्यों की प्रक्रिया को सर्जनात्मक स्तर पर गतिशील कर सके ।"[2]

बेकर ने भी "उपन्यास को महाकाव्य के गंभीर, नैतिक

---

1. It teaches not what it is like to be alive at a certain time but what it is like to be a human being - E.M.W.Tillyard - The Epic strain in the English Novel - P.15
2. डा. रघुवंश - "हमारा उपन्यास - परिवेश और भारतीयता" लेख से उद्धृत - धर्मयुग 10 मई 1970

तथा दार्शनिक सत्यों के संप्रेषण के कारण महाकाव्य का स्थानापन माना है ।"[1] प्रसिद्ध उपन्यासकार इलाचन्द्र जोशी लिखते हैं, "जब-जब सामूहिक निराशा से भरे संकटपूर्ण अवसर इस देश में आए तब तब किसी न किसी महाकवि का आविर्भाव हुआ और उसके मुँह से महान् आस्था को वाणी हम ने सुनी ।"[2]

आधुनिक युग में किसी न किसी प्रकार महाकाव्य की अनिवार्यता सिद्ध हुई है । शायद इसलिए रैल्फ फॉक्स ने कहा है । "आधुनिक उपन्यासकार नये युग के नये समाज के महाकाव्यकार है ।"[3] इसलिए उपन्यासों में महाकाव्यात्मक चेतना दिखाई पडती है ।

यथार्थ और उपन्यास

यथार्थ और उपन्यास का अटूट संबंध है । जो दृश्यमान

---

1. Historically it (Novel) originates in one of the following ways as a substitute for epic or narrative poetry in tales made up to convey moral or philisophical truth - Baker - The History of the English Novel - Vol.I - P.23
2. आलोचना, अप्रैल 1954 अंक 11 - पृ. 22 - विश्व उपन्यास का क्रमिक विकास और भविष्य शीर्षक लेख से उद्धृत ।
3. रैल्फ फॉक्स - उपन्यास और लोक जीवन - अनु. नरोत्तमनागर - पृ. 47

होता है वही यथार्थ है । यथार्थ केवल दिखाई नहीं पडता है, कभी कभी सुन पडता है, और कभी मन में हमारे अनुभवों से प्रकट होता है । जीवन में अभिव्यक्त अनुभूतियाँ यथार्थ है । क्रॉस ने अपनी पुस्तक "डेवलपमेंट आव इंगलिश नावेल में लिखा है "सामान्य रूप से उपन्यास उस गद्य आख्यान को कहा जाता है जो यथार्थ जीवन का यथार्थवादी दृष्टि से अध्ययन करें ।"[1] क्लारा रीव ने "उपन्यास को यथार्थ जीवन का तथा उस काल का चित्र माना है, जिस में वह लिखा गया है । वह कहता है कि उपन्यास की पूर्णता इसी बात में है कि वह हमारी परिचित वस्तुओं और दृश्यों का चित्रण इसी ढंग से करे कि वह सामान्य हो जाए और कम से कम उपन्यास पढ़ते समय पाठक को यथार्थ का भ्रम होने लगे और वह उनके ही रंग में रंग जाये ।"[2]

---

1. Cross - The Development of English Novel - P.1
2. The Novel is a picture of real life and manner and of times, in which it is written. The Novel gives a familiar relation of such things, as pass every day before our eyes, such as may happen to our friends, or to ourselves, and the perfection of it is to present every scene in so easy and natural a manner and to make them appear so probable as to deceive us into persuasion (at least while we are reading) that all is real until we are affected by joy or distresses of person in the story as if they were our own - The progress of Romance - Clara Reav.

सामाजिक यथार्थ बनाम औपन्यासिक यथार्थ

उपन्यासकार मानव जीवन के यथार्थ पर अपनी रचना की सृष्टि करता है । इसलिए यह तो होता है कि उपन्यास में मानव जीवन का यथार्थ और समग्र चित्र मिलता है । हेनरी जेम्स ने उपन्यास में यथार्थ चित्रण पर गौरव देते हुए लिखा है - "यह कहना व्यर्थ है कि सत्यता के विवेक के अभाव में आप एक अच्छा उपन्यास नहीं लिख सकते । किन्तु आपको उस सत्य को अपने जीवन में पाने की कोई विधि बना सकना कठिन है । मानवता विशाल है और सत्य के असंख्य रूप हैं ।..... ज़्यादा से ज़्यादा यह कहा जा सकता है कि किसी उपन्यास में यथार्थ की गंध होती है और किसी में नहीं ।..... मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि सत्यता का वातावरण एक उपन्यास का सब से बड़ा सद्गुण है - वह गुण जिस पर अन्य सभी गुण निर्भर है । यदि वह नहीं है, तो सब कुछ होना व्यर्थ है । यदि वह है तो वह उन प्रभावों का ऋणी है जिनके द्वारा लेखक ने जीवन के भ्रम को खड़ा किया । इस सफलता को पाने की प्रणाली उपन्यासकार की कला का प्रारंभ और अंत है ।"[1] पाश्चात्य धारणा है कि यथार्थवादी उपन्यासकार जीवन की गंभीर तस्वीर प्रस्तुत करता है ।

"यथार्थ एक व्यापक और संश्लिष्ट वस्तु है जिसमें मानव

---

1. आधुनिक साहित्य (प्रतापनारायण टण्डन) उपन्यास कला पर हेनरी जेम्स के विचार शीर्षक निबन्ध - पृ. 35

समाज के सामूहिक और व्यक्तिगत बाहरी भीतरी, परिस्थितिगत और मानसिक अंधकारमय और प्रकाशमय सभी प्रकार के सत्य एक दूसरे से मिले जुले होते हैं ।"[1] वास्तव में यथार्थ के लिए स्थल काल बाधा नहीं, वह विस्तृत एवं सूक्ष्म, बाहरी एवं भीतरी है ।

यथार्थवाद वस्तु संबंधी दृष्टा की धारणा है । यह धारणा द्रष्टा के मन में, वस्तुजगत् की देश और काल संबंधी सीमाओं से ऊपर चलकर रहती है । यथार्थवादी उपन्यासकार अव्यवस्थित, अनिश्चित, अलक्ष्य मानव जीवन को सुव्यवस्थित, सुनिश्चित रूप तथा नये अर्थ दे देता है । यथार्थवाद का लक्ष्य है, मानव जीवन को वस्तुपरख रूप से पढ़ना और उसका अर्थ स्पष्ट रूप से अपनाने का प्रयत्न करना । साहित्य और यथार्थ के संयोग से यथार्थवाद बन जाता है । उपन्यास और यथार्थ यथार्थवाद के अन्तर्गत आते हैं । साहित्य में यथार्थ पश्चिमी देन है । साहित्य में यथार्थवाद के संबंध में मॉर्डन रेफ्रन्स एनसैक्लोपीडिया में लिखा है कि "मानव जीवन के वस्तुनिष्ठ यथार्थ को यथातथ्य रूप में प्रस्तुत करना साहित्य में यथार्थवाद का लक्ष्य होता है । अब तक यथार्थ सभी कलाओं का आवश्यक कच्चा माल होने की वजह से यथार्थवाद की उपस्थिति साहित्य के आरंभ से है ।"[2] यथार्थवाद साहित्य का अभिन्न अंग है किन्तु कलाकार अपना

---

1. हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा - डा. रामदरश मिश्र - पृ. 28
2. Realism in literature has its goal, the faithful sendering of the objective reality of human life. Since reality is the necessary raw-material of all art, reali has certainly existed since literature began.

"हिन्दी साहित्यकोश" के अनुसार यथार्थवाद "साहित्य की एक विशिष्ट चिन्तन-पद्धति है जिसके अनुसार कलाकार को अपनी कृति में जीवन के यथार्थ रूप का अंकन करना चाहिए ।"[1] साहित्य में यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए उपन्यास का आरंभ हुआ है अन्य अनेक साहित्यिक विधाओं की अपेक्षा समाज के यथार्थ को अभिव्यक्ति देने में उपन्यास आगे हैं । "कविता और नाटक यथार्थवाद से प्रभावित हुए हैं परन्तु उसने उपन्यास में अपनी चरमोन्नति प्राप्त की है ।"[2]

उपन्यासकार के क्षेत्र और उसकी सीमाओं के विषय में बहुत से मत मिल सकते हैं । कुछ लोगों ने "इस समस्या को उसके नैतिक दृष्टिकोण से संबद्ध करके भी देखा है ।"[3] उपन्यासकार अत्यन्त स्वच्छन्द होकर अपने हृदय पटल पर पड़े हुए जीवन के जीते जागते चित्रों को प्रस्तुत करता है । नाटक और महाकाव्य के से बन्धन उपन्यास-लेखन के लिए नहीं होते..... वह कथा साहित्य का सरल रूप है ।

---

1. हिन्दी साहित्यकोश - 5660 - सं. धीरेन्द्र वर्मा आदि ।
2. Poetry and Drama were influenced by realism, but it was in the novel that realism achieved greatness - Modern Reference Encyclopedia - P.206
3. The Artist's first obligation is to his vision rather than to his Moral point of view..... The Artist must stick to his range, whatever is fid geting his conscience - (Lord Devil Cecil.)

उपन्यासकार के क्षेत्र के विषय में राल्फ फाक्स के विचार भी महत्वपूर्ण है ।[1]

सामाजिक यथार्थ के रूपायन में धार्मिक परिस्थिति

भारत जैसे विशाल देश में अनेक धर्म और सम्प्रदायों के लोग मिल जुलकर रहते हैं । भारतीय सामाजिक जीवन में धर्म का स्थान सर्वोपरि है । लेकिन परिस्थितियों की जटिलता और विदेशी आक्रमणों के कारण धर्म से बुद्धि पक्ष या दार्शनिक आचार-विचार शिथिल हो गया और भाव पक्ष या आचार पक्ष प्रमुख हो गया । इस्लाम धर्म के आक्रामक स्थिति ने हिन्दुओं को धार्मिक आचार विचार का कट्टरता से पालन करने के लिए बाध्य कर दिया । कहा जाता है कि हिन्दू धर्म में साधना पक्ष के स्थान पर बाह्याचार और कर्मकाण्ड की स्थापना हो गयी । इतना होते हुए भी शिक्षा के प्रसार के साथ साथ रूढ़िगत धर्म के प्रति जनता के मन में उपेक्षा भाव पनप रहा है । बुद्धिसम्मत धर्म के प्रति आस्था बढ़ रही है ।

---

1. For the novel will always have the advantage of being able to give a complete picture of man, of being able to show that important inner life, as distinct from the purely dramatic man, the acting man, which is beyond the scope of Cinema - Ralph Fox.

धर्म कुछ कर्तव्यों और आचरणों से प्रकट होता है "जो अपने आप की सुख सुविधा का ध्यान न रखकर दूसरे के दुख को दूर करने का प्रयत्न करता है, सत्य से च्युत नहीं होता, दूसरों का कष्ट दूर करने के लिए अपना प्राण तक त्याग सकता है, वही धार्मिक है ।"[1] द्विवेदीजी ने इस उपन्यास में व्यक्तिवादी चेतना से सामाजिक चेतना की ओर यानी व्यष्टि-समष्टि के समन्वित स्वरूप की ओर मानवीय विचारों को आकर्षित किया । इसलिए ईश्वर को वे व्यक्तिवादी साधना का साध्य मानते थे तो धर्म को एक सामाजिक उन्नति एवं विकास का साध्य । उनके अनुसार दु:खियों का दु:ख दूर करना ही सच्ची आध्यात्मिक साधना है । यही तप है, यही मोक्ष है ।[2] यद्यपि मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलनों ने धर्म के अंधविश्वासों, बाह्याडम्बरों और अनाचारों पर तीव्र प्रहार तो किये हैं तथापि नये धार्मिक जीवन मूल्य विकसित या पनप नहीं हो सके ।

राजनैतिक परिस्थिति

साहित्य और राजनीति का अटूट संबंध है । आज के युग में राजनीति के सर्वव्यापी रूप से कोई भी साहित्यकार दूर नहीं रह सकता । भारतवर्ष में राष्ट्रीयता का ठीक विकास उन्नीसवीं शताब्दी से हुआ । मुगलकाल में देश में अनेक छोटे बडे राज्य थे, जो अपने स्वार्थ के लिए एक दूसरे से युद्ध करते रहते थे । अंग्रेज़ी शासन की प्रतिष्टा हो

---

1. अनामदास का पोथा - पृ. 64
2. वही - पृ. 72

जाने पर देश के प्राय: सभी राज्य धीरे धीरे अंग्रेज़ों के अधीन हो गये । संपूर्ण देश में शासन संप्रदाय तथा शिक्षा प्रणाली प्राय: एक सी थी । यातायात की सुविधाएँ बढ़ने के साथ साथ देश में राष्ट्रीय एकता भी बढ़ने लगी । विश्व विद्यालयों की स्थापना हुई और उच्च शिक्षा का प्रसार भी हुआ । ईश्वरचंद विद्यासागर, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द जैसे महापुरुषों ने विचारों का प्रसारण किया और नवीन विचार-धारा का प्रभाव जनता पर बढ़ने लगा ।

कांग्रेस का आन्दोलन लगभग देशव्यापी हो चुका था । इसी काल में महाराष्ट्र में श्री बालगंगाधर तिलक ने राष्ट्रीय आन्दोलन को एक नया मोड दिया । उन्होंने अपना "केसरी" नामक एक श्रेष्ठ पत्र निकाला तथा उसके माध्यम से सरकारी नीति की तीव्र आलोचना करने लगे । सन् 1897 में दो ब्राह्मण युवकों को एक अंग्रेज़ का वध करने के सिलसिले में संपूर्ण फाँसी पर चढ़ा दिया गया । इससे सारे देश में कोलाहल मच गया ।

कांग्रेस में दो दल थे । गर्मदल और नर्मदल । गर्मदलवाले तिलक, लालालजपतराय और विपिनचन्द्र पाल (बाल-लाल-पाल) थे । नर्मदलवाले गोपालकृष्ण गोखले, फीरोज़शाह मेहता, सुरेन्द्र बनर्जी, मदन मोहन मालवीय आदि नेता थे । गर्मदलवाले चाहते थे कि देश पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करे । नर्मदल वाले भारत में पार्लिमेंटरी ढंग की उत्तरदायी सरकार

का गठन चाहते थे । सन् 1916 में लखनऊ में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ और उसमें समाजवादी विचारधारा को बल मिला । अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा "चाहे समाजवादी सरकार की स्थापना सुन्दर भविष्य की ही बात क्यों न हो और हम से बहुत से लोग उसे अपने जीवन में भले ही न देख पावें , लेकिन समाजवाद वर्तमान में वह प्रकाश है जो हमारे पथ को आलोकित करता है ।"[1]

भारतीय राजनीतिक परिस्थितियों में समाजवादी दर्शन न केवल विदेशी पूँजीवाद या साम्राज्यवाद से लड़ता है, अपितु देशी पूँजीवाद से भी टक्कर लेता है । मार्क्सवादी दृष्टि में मध्यवर्ग एक प्रतिक्रियावादी शक्ति है और यह विनष्ट होना चाहिए । मार्क्सवाद शोषक और शोषित इन दोनों प्रकार के वर्गों को समान मानता है । और उसकी स्थापना है कि दोनो वर्गों के अपने अपने स्वार्थ हैं । अतः वर्गसंघर्ष अनिवार्य है । इस प्रकार साम्यवादी दल वर्ग संघर्ष में क्रांति या हिंसा प्रयोग को अनैतिक नहीं मानता ।

सन् 1917 की रूसी क्रांति के प्रबल नेता लेनिन थे । इस क्रांति का उद्देश्य पूँजीवाद के विरुद्ध मज़दूरों की तानाशाही प्रतिष्ठित करना था । इसका परिणाम यह हुआ कि किसान मज़दूरों ने ब्रिटिश

---

1. जवाहरलाल नेहरू - 'एटीन मंथ्स इन इंडिया' - पृ. 41

साम्राज्यवाद तथा भारतीय पूँजीवाद के विरुद्ध संगठित होकर, अपने हितों की रक्षा के लिए अनेक व्यापक आन्दोलन किये ।

सन् 1919 में बालगंगाधर तिलक की मृत्यु के बाद देश की राजनैतिक दशा अत्यन्त बनी थी । दक्षिणी आफ्रीका में क्रांति चलाते रहने के कारण महात्मा गाँधी अब तक काफी प्रसिद्ध हो चुके थे । अब उन्होंने राजनीति के क्षेत्र में प्रवेश किया । आपकी लोकप्रियता ने उन्हें जल्दी ही राष्ट्रपिता बना दिया । और प्रायः इस समय के बाद से राष्ट्रीय आन्दोलन का संचालन उन्हीं के द्वारा होता रहा । उनके सिद्धान्तों का कांग्रेस जनता और सरकार पर काफी प्रभाव पडा और वह अंत तक अपने सिद्धान्तों पर अटल रहे ।

आर्थिक परिस्थिति

किसी भी देश का संपूर्ण सामाजिक एवं राजनीतिक ढाँचा वहाँ की आर्थिक व्यवस्था पर निहित है । यह आर्थिक स्थिति "मनुष्य का भौतिक, सामाजिक, परिवेश है और इसकी मुख्य विशेषता यह है कि यह स्थिति मनुष्य की इच्छा, उसकी चेतना, उसकी अपेक्षाओं और आशाओं आदि के फ्रेमवर्क से बाहर अपनी स्वतंत्र सत्ता लिए रहती है ।"

अंग्रेज़ों के आगमन से पूर्व ही भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार गाँव था । प्रत्येक गाँव में दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुओं का उत्पादन होता था और लोगों के बीच वस्तुओं का विनिमय प्रधानत: लेन देन था । उस समय गाँवों में कलात्मक वस्तुओं का सृजन होता था । यह सृजन ग्रामीणों के लिए न होकर नगरों में रहनेवाले सामंतों, राजा महाराजाओं तथा धनी व्यक्तियों के लिए होता था । और इसी के लिए भारतीय कलात्मक उद्योग धंधे जीवित थे । भारत से सूती रेशमी वस्त्र, शाल दुशाले, सोने, चाँदी, हाथी दाँत, लकडी और पत्थर की कलात्मक वस्तुओं का निर्यात युरोप के देशों को होता था । युरोप भारतीय व्यापार का बाज़ार था और वहाँ का बहुत सा सोना चाँदी भारत जाता था ।

भारत संसार भर में सोने की चिडिया के नाम से विख्यात था । उस समय छोटे छोटे गाँव में कृषि की संयुक्त प्रथा प्रचलित थी । धान्य का आपस में बंटवारा होता था । इसके साथ ही प्रत्येक घर में कातने-बुनने का काम भी होता था । भूमि गाँव की सार्वजनिक संपत्ति मानी जाती थी । इस प्रकार गाँव आत्मनिर्भर होने के साथ आर्थिक इकाई भी थे । युद्धपूर्व ब्रिटिश भारत की आर्थिक स्थिति का सिंहावलोकन करने पर संक्षेप में कह सकते हैं कि "अंग्रेज़ों ने हिन्दुस्तानी समाज की सारी आर्थिक बुनियाद को तहस-नहस कर दिया ।"[1]

---

1. पंडित जवाहरलाल नेहरू - हिन्दुस्तान की कहानी - अनु: रामचन्द्र टंडन पृ. 373

ऐतिहासिक उपन्यास

इतिहास मनुष्य और मानवता के विकास का द्योतक है, और यही इसका सन्देश है । मनुष्य के विकास क्रम में कठिन संघर्ष का तत्व दिखाई पडता है । प्रकृति, मनुष्य और समाज के मध्य, सृष्टि के आरंभ से ही द्वन्द्व चलता आया है । इस अनादि, असंख्य द्वन्द्व का लेखा-जोखा मानव का इतिहास है । "ऐतिहासिक उपन्यास के लिए इतिहास या तो कच्चा माल होना चाहिए जिसे रचनाकार अपने समकालीन अनुभवों की आँच में पकाकर नया रूप दे दें ।" ऐतिहासिक उपन्यासों के लिए इतिहास को रक्षा करने के साथ साथ उसके स्वरूप को अपनी कल्पना के द्वारा स्पष्ट करना भी आवश्यक है ।

"उपन्यास में इतिहास का अंधानुकरण नहीं हो सकता, सबसे पहले तो यह उपन्यास है, जिसका मूलरूप साहित्यिक है साथ ही इतिहास भी है, जिसकी मर्यादा की रक्षा करनी पडती है ।"[1]

संस्कृति का स्वरूप

जीवन के समस्त पहलुओं को उसकी संस्कृति कहा जा सकता है । जवाहरलाल नेहरू की राय में "संस्कृति तो एक ऐसा पारस पत्थर होना

---

1. डा. रामशोभित प्रसादसिंह - हिन्दी उपन्यास प्रेमचन्दोत्तरकाल - पृ. 258

चाहिए, जिसमें हर चीज़ की आजमाइश हो सकें ।"[1] भारतीय संस्कृति के स्वरूप में वेदों और पुराणों की देन उल्लेखनीय है । यह संस्कृति ज्ञानोन्मुख और कर्मोन्मुख है । भारतीय जीवन दर्शन कर्मफल पर आधारित है । उसमें जीवन के प्रति विरक्ति या अनास्था का नहीं, प्रत्युत सार्थकता और आस्था का महत्व है ।

ऐतिहासिक सांस्कृतिक उपन्यास

साहित्य, इतिहास और संस्कृति, इन तीनों का परस्पर संबंध प्राचीनकाल से है । अंग्रेज़ी साहित्य में अठारहवीं शती के अंत में ही उपन्यास में इतिहास और संस्कृति का प्रयोग आरंभ होने लगा था । इन्हें आधार मानकर उपन्यास लिखने का काम सर वाल्टर स्कॉट ने किया था । उन्होंने ऐतिहासिक भावबोध को प्रमुख स्थान दिया था, सांस्कृतिक कल्पना को कम ।

प्रेमचन्दोत्तर काल में ऐतिहासिक उपन्यास की यथाशीघ्र उन्नति हुई । प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों की मुख्य विशेषता यह है कि उन्होंने अतीत की सामग्रियों को आधुनिक युग के संदर्भों के अनुकूल स्वीकार किया । इतिहास में ऐसे अनेक पात्र एवं घटनाएँ हैं जो भविष्य के लिए

---

1. आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी - ऐतिहासिक उपन्यास प्रकृति एवं स्वरूप - डा. गोविन्द जी - पृ. 19

मार्गदर्शन करने में सक्षम हैं । वृन्दावनलाल वर्मा के "गढ़कुंडार" के प्रकाशन से ऐतिहासिक उपन्यास परंपरा को नया मार्गदर्शन मिला । उस समय अनेक लेखक हुए हैं जिन्होंने इतिहास के माध्यम से अपने युग की सच्चाइयों का सपाट अंकन उपन्यासों में किया ।

ऐतिहासिक यथार्थवाद

अतीत को वर्तमान में ग्रहण करना ऐतिहासिक यथार्थवाद है । अर्थात् आज का दिन कल का इतिहास हो जाता है । आज की घटनाएँ, कला, साहित्य, राष्ट्रीय समस्याएँ, जीवन की सच्चाईयाँ , कल अतीत की बात हो जाती हैं । आज का यथार्थ कल का ऐतिहासिक यथार्थ हो जाता है इस संबंध में डा॰ सुरेश सिन्हा का मत विचारणीय है । "ऐतिहासिक यथार्थवाद और यथार्थवाद में कोई तात्त्विक अन्तर नहीं है ..... वास्तव में ऐतिहासिक वातावरण का पूर्ण यथार्थवादी चित्रण करना ही ऐतिहासिक यथार्थवाद है ।"

महाकवि शेक्सपीयर ने मनुष्य के भौतिक जीवन की नश्वरता तथा निस्सारता की ओर इंगित करते हुए लिखा है, "जीवन एक चलती फिरती छाया मात्र है, यह एक दीन हीन अभिनेता है, जो रंगमंच पर एक घंटे के लिए खेल कूद करता है और फिर सदैव के लिए विलीन हो जाता है । यह (मानव जीवन) मूर्ख द्वारा कथित एक कथा है

जिसका कोई अर्थ नहीं है ।"[1]

विन्सेन्ट स्मिथ ने लिखा है "भारत की भिन्नता में एकता विद्यमान है, परन्तु मौलिक एकता उतनी स्पष्ट नहीं है, जितनी बाह्य भिन्नता ।"[2]

डा. रमेशचन्द्र मजूमदार के विचार में "महाकाव्यों तथा पुराणों में संपूर्ण देश की भारतवर्ष या भारतभूमि के नाम से संबोधित करके भारत की मौलिक एकता पर बल दिया गया है ।"[3]

स्मारकों के विषय में स्मिथ महोदय ने लिखा है - "वे विद्यार्थी जो केवल साहित्यिक साक्ष्य तक अपने को सीमित रखते हैं ।

---

1. Life's but a walking shadow, a poor player that starts and frets his hour upon the stage, And then is heard no more it is a tale Told by an idiot, full of sound and fury signifying nothing.
2. India offers unity in diversity. The underlying unity being less obvious than the superficial diversity (V.A.Smi
3. The fundamental unity of India is emphasizes by the name Bharat Varsha or land of Bharat, given to the whole country in the Epics and puranas - R.C.Majumdar.

भारतीय धर्म तथा कला के इतिहास को पूर्ण रूप से नहीं समझ सकते हैं । स्मारकों तथा कला की वस्तुओं का साक्ष्य समान रूप से महत्त्वपूर्ण है ।"[1]

औद्योगिकरण

भारत में ब्रिटिश शासन के साथ ही लघु एवं कुटीर उद्योगों का पतन आरंभ हो गया था । इनके पतन के तीन प्रमुख कारण थे । पहला कारण था कि अंग्रेज़ों ने भारत के लघु एवं कुटीर उद्योगों से निर्मित माल के निर्यात पर प्रतिबंध लगा दिया । भारतीय उद्योगों में बने माल का बाज़ार न होने के कारण भारतीय लघु एवं कुटीर उद्योगों में सामान बनना बंद हो गया । दूसरे ब्रिटिश शासन के आगमन के साथ ही भारतीय राजाओं, नवाबों, एवं छोटे छोटे शासकों का, जिनके अधीन में भारतीय कारीगर काम करते थे , पतन हो गया । तीसरे इंग्लैंड में निर्मित माल भारत में आकर बिकने लगा । ब्रिटिश सरकार ने अपने शासन को सुदृढ बनाने के लिए उद्योग धंधों को बढ़ावा दिया और भारत में रेलों का जाल फैलाना आरंभ कर दिया । सन् 1918 की मांटेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट का यह अंश इस संदर्भ में अनुवचीय है -

---

1. The history of Indian religions cannot be perfectly understood by students who confine their attention to literary evidence. The testimony of monuments and the works of art are equally important . (V.A.Smith)

"आर्थिक और सैनिक दोनों ही दृष्टियों से साम्राज्यवादी हितों की यही मांग है कि अब से हिन्दुस्तान के प्राकृतिक साधन और अच्छी तरह से काम में लाये जायें । हिन्दुस्तान का औद्योगीकरण होने पर साम्राज्य की ताकत और कितनी बढ़ जायेगी, हम अभी तक इसका हिसाब नहीं लगा सकते ।"[1] यह कथन स्पष्ट करता है कि भारत के औद्योगिक विकास के पीछे अंग्रेज़ों का अपने शासन को सुदृढ बनाने का निजी स्वार्थ था । भारत में अंग्रेज़ों ने अधिकाधिक कारखाने खोलने आरंभ कर दिये, जिनमें लोहे, कागज़, सीमेंट तथा खनिजों के उद्योग विशेष रूप में उल्लेखनीय है । इन उद्योगों के साथ साथ देश में छापेखाने तथा बडे बडे प्रेस भी स्थापित हुए ।

दादा भाई नौरोजी ने कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन में सभापति के स्थान से बोलते हुए कहा - "भारतीय निर्धन बच्चों का तन काटकर प्रतिवर्ष बीस करोड रुपया केवल वेतन एवं पेंशन के नाम पर इंग्लैंड भेजा जाता है । ऐसा देश आर्थिक सिद्धान्तों की चर्चा कैसे कर सकता है ।"[2] गोपालकृष्ण गोखले ने भी अंग्रेज़ी सरकार की कर नीति का बडा विरोध किया । "किसानों का शोषण प्राय: बढ़ता गया । किसानों का शोषण तीन दिशाओं में तीव्र हो चला था । साहूकार वर्ग का कर्ज, ज़मीन्दार का भारी लगान तथा आवश्यक वस्तुओं पर करों का बढ़ना ।"[3]

---

1. रजनी रामदत्त - इंडिया टूडे - पृ. 144
2. डा. हेमेन्द्रकुमार पानेरी - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास मूल्य संक्रमण - पृ. 583
3. डा. चंडीप्रसाद जोशी - हिन्दी उपन्यास समाज शास्त्रीय विवेचन - पृ. 320

शिक्षा का प्रसार

आधुनिक युग में विकास का एकमात्र मार्ग शिक्षा है । शिक्षा के द्वारा व्यक्ति सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक उन्नति कर सकता है । राष्ट्रीय विकास शिक्षा पर निर्भर है । स्वतंत्रता के बाद राष्ट्र के समक्ष अनेक प्रश्न और समस्यायें उपस्थित हुई । इसमें अज्ञता और पिछडेपन की समस्या प्रमुख है । देश में शिक्षा के प्रसार का कर्तव्य मुख्यत: सरकार का ही कर्तव्य है । सातवें दशक तक शैक्षणिक सुविधाएँ नगरों में उपलब्ध हुई हैं । लेकिन ग्रामों में वह स्थिति अब भी वैसी ही है । कालेज, पालीटेकनिक, विश्व विद्यालय आदि नगरों में है, गाँवों में नहीं । शिक्षित स्त्रियाँ धर्म का विरोध करती हुई दिखाई देती हैं ।

विज्ञान का प्रभाव

समकालीन रचना की मुख्य समस्या अवस्द्धता और अमानवीयता से मुक्ति पाने की है । मानवीय संवेदना में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के हस्तक्षेप के कारण अमानवीयता के नाना प्रकार के नये नये षड्यंत्र पैदा कर रहे हैं । इस से मानवीयता के राह में नये नये खतरे उठकर जन्म ले रहे हैं । विज्ञान के मूल में व्यक्ति की ही नहीं वरन् समस्त मानव जाति की संघर्षपूर्ण स्थिति का चित्रण अनेक रचनाओं में हुआ है ।

विज्ञान की दुनिया में एक प्रकार का अंधविश्वास निर्भर है जो सर्वत्र दिखाई पडता है । यही कारण है कि मनुष्य विज्ञान

की दुनिया से भाग कर दूर होता चला जा रहा है । सुप्रसिद्ध विज्ञान वेत्ता डा.नार्लिकर की मान्यता है कि जिसके आगे हम सोचने में असमर्थ रहे, कि अब आगे क्या है, इस असमर्थता को ही हम ईश्वर की धारणा स्वीकार कर सकते हैं । अर्थात् तर्क से परे हैं । विज्ञान ने एक विशिष्ट अर्थ में, एक विशिष्ट शक्ति के रूप में ही ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार किया है । "अपने अपने अजनबी" में योके मानती है "सजीव उपस्थिति का नाम ही ईश्वर है ।" "कोई भी उपस्थिति ईश्वर है ।"[1] योके ईश्वर के परंपरागत रूप के प्रति अंधविश्वास व्यक्त करती है । वैज्ञानिक प्रगति के साथ दर्शन के क्षेत्र में दो धाराएँ विकसित हुई । एक नास्तिकवादी धारा जो भौतिकवाद पर अटूट विश्वास रखती है । और दूसरी आस्तिक धारा जो ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करती है ।

दार्शनिक चिन्तन में पुनर्जन्म कर्म और भाग्य में विश्वास व्यक्त किया गया है । पर आधुनिक युग में भाग्य पर विश्वास नहीं रह गया है । मानव स्वयं भाग्य का निर्माता बन गया है । वह अपने परिश्रम में भाग्य बनाता है, बदलता भी है ।

हिन्दी उपन्यास और सामाजिक यथार्थ का पहला चरण प्रेमचन्द युग

भारतवर्ष में कथा साहित्य का प्रचार वैदिक काल से आरंभ हो रहा है । लेकिन उपन्यास का आधुनिक प्रचलित रूप पाश्चात्य

---

1. अपने अपने अजनबी - अज्ञेय - पृ. 51

प्रभाव का आभारी है । हिन्दी के उपन्यास साहित्य का इतिहास लगभग 90 वर्षों का है । संस्कृत साहित्य में इसकी परंपरा बहुत पहले से प्रारंभ हो चुकी थी । संस्कृत के लोकप्रिय कथा साहित्य में बृहत्कथामंजरी, कथा सरित्सागर, वैतालपंचविंशतिका, पंचतंत्र, हितोपदेश आदि कथाओं में भारतीय कथा साहित्य की विकास धारा के स्पष्ट दर्शन होते हैं ।

बाणभट्ट की कादंबरी तथा हर्षचरित्र संस्कृत साहित्य के ख्यातिप्राप्त उपन्यास हैं । 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कथा साहित्य की प्रस्तुत धारा ने नूतनरूप ग्रहण कर भारतीय जन जीवन में प्रवेश किया । उस समय से लेकर आज तक उपन्यास अपने नूतन रूप में अंर्त-बाह्य दोनों दृष्टियों से विकसित होता चला जा रहा है । हिन्दी उपन्यास साहित्य के विकास को तीनों भागों में विभक्त किया जा सकता है - (1) पूर्व प्रेमचन्द युग, (2) प्रेमचन्द युग (3) प्रेमचन्दोत्तर युग ।

प्रारंभ में हिन्दी उपन्यास केवल मनोरंजन को लक्ष्य कर लिखे गये थे । उनमें घटनाओं की प्रधानता द्वारा चमत्कृति उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जाता था । इसे हिन्दी उपन्यास का प्रयोगात्मक युग कहा जा सकता है । चमत्कार प्रियता और मनोरंजन की प्रवृत्ति उन उपन्यासों में प्रमुख थी । बाद में औद्योगिक विकास, पाश्चात्य संस्कृति तथा साहित्य के प्रभाव के कारण परिस्थितियाँ बदलती गयीं और उपन्यास के स्वरूप का पर्याप्त परिवर्तन भी हो गया ।

प्रथम उत्थान - पूर्व प्रेमचन्द युग

यह युग प्रेमचन्द के पूर्व का समय है । जो सन् 1882 से लेकर 1916 तक है । भारतेन्दु युग के लेखक प्रारंभिक उपन्यासकार माने जा सकते हैं जिन्होंने पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव, राजनीतिक चेतना के विकास, राष्ट्रीयता के नव जागरण आदि के कारण उपन्यास कला के विकास में सहयोग दिया । उनके उपन्यासों में प्रेम, शौर्य, सतीत्व आदि की भावनाएँ प्रतिबिम्बित हैं । किशोरीलाल गोस्वामी की "त्रिवेणी" , स्वर्गीय कुसुम, राधाचरण गोस्वामी के विधवा विपत्ति, हनुमंतसिंह के कल्पलता, चंदकला, कार्तिक प्रसाद खत्री का "जया" आदि उच्चतर मानवीय भावनाओं से ओतप्रोत उपन्यास हैं । गोपालप्रसाद गहमरी, बालकृष्ण भट्ट, श्रीनिवास आदि की औपन्यासिक रचनाएँ भी प्रसिद्ध हैं । इनके अतिरिक्त बहुत सी तिलस्मी और ऐयारी उपन्यासों को भी रचनाएँ हुई जिनका उद्देश्य केवल मनोरंजन और चमत्कार पैदा करना ही था ।

द्वितीय उत्थान (प्रेमचन्द युग)

1916 से 1936 तक उपन्यासों की परंपरा यद्यपि पहले से ही प्रारंभ हो चुकी थी परन्तु हिन्दी साहित्य में सर्वप्रथम सफल उपन्यास बाबू देवकी नंदन खत्री का "चन्द्रकांता" माना जाता है । उनके अन्य उपन्यास हैं चन्द्रकांता, सन्तति तथा भूतनाथ हैं । तिलस्मी एवं जासूसी उपन्यासों के अतिरिक्त इस काल में सामाजिक, भावना प्रधान

ऐतिहासिक आदि कई प्रकार के उपन्यास लिखे गये । इन उपन्यासकारों में प्रमुख रूप से पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय, व्रजनन्दन सहाय, लज्जाराम मेहता आदि हैं । प्रेमचन्द युग के पूर्व के उपन्यासों में सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक यथार्थ चित्रण का सर्वथा अभाव रहा है । औपन्यासिक विचारधारा में पहले पहल क्रांतिकारी परिवर्तन लाने का कार्य मुंशी प्रेमचन्द ने किया । उन्होंने अनुभव किया था कि समाज का वर्तमानरूप, साहित्यकार से अपनी वास्तविकता के अनुरूप कोई ठोस चीज़ चाहता है । प्रेमचन्दजी ने स्वयं कहा -"पाठकों का सिर्फ मनोरंजन करना यह तो विदूषक एवं मदारियों का काम है । साहित्यकार का उद्देश्य तो यह है कि लोक जीवन को समाज की वास्तविकताओं को सामने लाकर चित्रित करके उसे उत्तरोत्तर ऊँचे स्तर पर उठाना ।" मुंशी प्रेमचन्द जी ने इसी विचारधारा को अपनी दृष्टि में रखा और यही कारण है कि उनके उपन्यासों में सर्वत्र समसामयिक भारतीय जीवन का सर्वथा मूर्तिमान रूप प्राप्त होता है ।

प्रेमचन्दजी ने साधारण जनता की वेदना और जीवन के विभिन्न पक्षों को सहानुभूतिपूर्वक चित्रित किया । इतना ही नहीं उनकी समस्याओं एवं प्रश्नों के लिए काल्पनिक आदर्शों की सृष्टि की । बाद में उन्होंने आदर्श को त्याग करके आदर्श और यथार्थ दोनों का समन्वय करते हुए आदर्शोन्मुख यथार्थ को स्थान दिया । प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प, निर्मला, गबन, सेवासदन, कर्मभूमि, गोदान, मंगलसूत्र आदि उपन्यासों में भारतीय समाज के जीवन्त चित्र उपस्थित किये हैं । जयशंकर प्रसाद ने

यथार्थ के धरातल पर कंकाल, तितली तथा इरावती उपन्यासों की रचना की । प्रेमचन्द जो की परंपरा में विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक ने माँ, भिखारिणी आदि उपन्यास लिखे ।

चतुरसेन शास्त्री के ललित उपन्यास है "हृदय की परख, हृदय की प्यास, अमर अभिलाषा, आत्मदाह, वैशाली की नगरवधू आदि । ऐतिहासिक उपन्यासकारों में वृन्दावनलाल वर्मा अत्यन्त प्रसिद्ध हुए । उन्होंने मृगनयनी, गढ़ कुंठार, विराटा की पद्मिनी, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई आदि प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासों का प्रणयन किया । पांडेय बेचन शर्मा उग्र ने दिल्ली का दलाल, बुधुआ की बेटी आदि उपन्यासों की रचना कर हिन्दी उपन्यास साहित्य को समृद्ध किया ।

प्रेमचन्दजी के बाद हिन्दी उपन्यास की दो प्रमुख धारायें हुई । इनमें से एक धारा समाजवादी था क्रांतिवादी उपन्यासकारों की हो गई । प्रगतिशील उपन्यासकारों ने प्रेमचन्दजी के समान मज़दूरों, किसानों तथा निम्न मध्यवर्ग के जीवन चित्रण को अपना विषय बनाया । उन्होंने सामाजिक यथार्थ को मुख्य स्थान दिया है । ये लोग अपनी रचनाओं में प्रेमचन्दजो की अपेक्षा यथार्थ के अधिक आग्रही हैं । इनके पात्र व्यक्तिगत एवं वर्गगत विशेषताओं से समन्वित होते हैं और उपन्यास मे देशकाल का व्यापक चित्र अंकित किया जाता है ।

श्री यशपाल दिव्या, अनिता, दादा कामरेड, पार्टी कामरेड, देशद्रोही आदि उपन्यास लिखकर समाजवादी विचारधारा को प्रश्रय दिया । राहुल सांकृत्यायन के मधुर स्वप्न, सिंह सेनापति आदि उपन्यासों ने समाजवादी विचारधारा को बुलंद किया है ।

इस क्षेत्र में उपेन्द्रनाथ अश्कजी ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया । उन्होंने "गिरती दीवारें", "गर्मराख", "सितारों के खेल" आदि उपन्यास लिखे । श्री रांगेय राघव ने मुर्दों का टीला, घरौंदे, श्री भगवतीचरण वर्मा ने टेढ़े मेढ़े रास्ते, तीन वर्ष, चित्रलेखा, भूले बिसरे चित्र आदि उच्चकोटि के उपन्यास लिखे । प्रतापनारायण श्रीवास्तव ने विदा, विजय, विकास बयालीस, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने "अप्सरा, अलका, निरूपमा" आदि उपन्यास साहित्य को समर्पित किया ।

प्रगतिशील उपन्यास में आँचलिक उपन्यास भी आते हैं । ऐसे आँचलिक उपन्यासों की अपनी गरिमा होती है । इनमें किसी विशेष भू भाग क्षेत्र या अंचल का व्यापक चित्र अंकित किया है । इस कोटि में नागार्जुन के "नई पौध, बाबा बटेसरनाथ, बलचनमा, दुखमोचन," श्रीफणीश्वरनाथ रेणु के "मैला आंचल, परती परिकथा तथा रामदरश मिश्र के "पानी के प्राचीर," आदि उपन्यास प्रसिद्ध हैं । इन उपन्यासों में स्थानीय जन जीवन को सर्वथा जीवन्त रूप में, अत्यन्त सहानुभूतिपूर्ण ढंग से देखा, परखा और उतारा गया है ।

द्विवेदीजी के उपन्यास में प्राचीनता और अर्वाचीनता, शरस्त्रीय बोध और आध्यात्मिकता जैसे विरोधी तत्वों का समावेश हुआ है । उनके उपन्यासों की सामाजिक चेतना की बुनियाद लोकमंगल की भावना है । उनका मानवतावादी जीवन दर्शन सामाजिक प्रतिबद्धता का पर्याय है । आधुनिक समाज की विषमताओं, कुरूपताओं, अत्याचारों पर दृष्टिपात करने का उपन्यासों में कहीं कहीं प्रयास हुआ है । "इस समाजीकरण की प्रक्रिया से समसामयिक समाज के संपर्क में आने और भविष्य की संभावनाओं को अतीत से जुडे साहित्य इतिहास से पाने का अवसर प्राप्त होता है ।"[1]

मनोविज्ञान

मनोविज्ञान के अध्ययन तथा प्रचलन के कारण साहित्यकारों के दृष्टिकोण में अद्भुत एवं महान परिवर्तन हुए । फ्रायड युग और एडलर के मनोविज्ञान संबंधी सिद्धान्तों ने संसार भर में हलचल मचा दी । इस परंपरा के उपन्यासकारों ने समाज को नहीं बल्कि व्यक्ति और उसकी मानसिक भावनाओं को अधिक महत्व देना आरंभ कर दिया । मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में कामवासना, प्रेमव्यापार आदि के साथ साथ मनुष्य के मानसिक संघर्षो तथा विचारों की उथल-पुथल आदि को चित्रित किया जाता है । इस परंपरा में श्री इलाचन्द्र जोशी ने पर्दे की रानी, सन्यासी, प्रेत और छाया, जहाज़ का पंछी, सुबह के भूले आदि उपन्यास

---

1. गिरिराज किशोर - अतएव अंक 3 - जनवरी-मार्च 1988 - पृ. 113

लिखे हैं । इसी श्रेणी में सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय ने भी वैचारिकता को अत्यधिक महत्व देते हुए "शेखर एक जीवनी" तथा "नदी के द्वीप" जैसे उपन्यास लिखे हैं ।

नागार्जुन

भारतीय जनसाधारण के गहरे मानस में जुड़े हुए उपन्यासकारों में नागार्जुन का स्थान सर्वोपरि है । जन जीवन की मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करने में उन्होंने बिहार के एक एक ग्रामांचल को चुन लिया है । दरभंगा जिले की कहानी के माध्यम से आपने संपूर्ण भारतीय जन जीवन की दर्दभरी कहानी कह डाली है ।

नागार्जुन ने जयप्रकाश नारायण द्वारा प्रेरित समग्र क्रांति के आन्दोलन में पूर्ण रूप से भाग लिया और वे जेल गये । जेल विमुक्त होने के पश्चात् समग्र क्रांति के प्रति उनका जो मोह था, वह भंग हुआ । उन्हें विश्वास था कि यह क्रांति आर्थिक मुद्दों पर घटित नहीं थी । और इस क्रांति का गला प्रतिक्रियावादी और पूँजीपतियों ने असमय ही घोंट लिया था । परिणाम हुआ कि समग्र क्रांति, वोट क्रांति में बदल गयी । उपर्युक्त विवेचन से हम कह सकते हैं कि युग विशेष का सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं आर्थिक जीवन परस्पर घनिष्ठ रूप से संबद्ध रहता है । नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में समसामयिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों का विस्तृत रूप से अध्ययन किया है ।

उनके उपन्यास एक साथ ही सामाजिक तथा राजनीतिक भित्ति पर आधारित है । उपन्यासकार की धर्मभावना बाह्याडंबरों और अंध विश्वासों से मुक्त होकर मानवतावाद की परिधि का स्पर्श करती है ।

नागार्जुन की खोज काल्पनिक नहीं, यथार्थ से संबंधित है । तभी तो डा. बिन्दु अग्रवाल ने उनके बारे में लिखा है - "नागार्जुन प्रेमचन्द की परंपरा के सच्चे अर्थ में यथार्थवादी लेखक हैं ।"[1] नागार्जुन के उपन्यासों में पहली बार आंचलिक प्रवृत्ति का दर्शन होता है । डा. शशिभूषण सिंहल का मत है -"नागार्जुन की कला की विशेषता है - कथन का सुनिश्चित क्रम, कथ्य का संक्षिप्त निरूपण, सजीव चित्रण, प्रसंग की मार्मिकता तथा प्रगतिशील तत्वों के प्रति आग्रह ।"[2]

नागार्जुन प्रगतिशील साहित्यकार है । आप की कथानकों का विन्यास परंपरावादी है और उनका चयन प्रगतिशील परंपरा के अनुसार साधारण जनमानस से लिया गया है । वे साधारण जनता के आर्थिक पराधीनता, पीडा, अभाव, अपमान, संघर्ष आदि को यथार्थवादी दृष्टि से चित्रित करते हैं ।

---

1. डा. बिन्दु अग्रवाल - हिन्दी उपन्यास में नारी चित्रण - पृ. 233
2. डा. शशिभूषण सिंहल - हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ - पृ. 131

नागार्जुन की साहित्यिक उपलब्धियों का उल्लेख करने के बाद हम अंत में डा. बेचन के शब्दों में कह सकते हैं - "नागार्जुन के उपन्यासों में न केवल बिहार वरन् संपूर्ण राष्ट्र बोल रहा है । घटनाओं का यह जमघट आज जीवन की वास्तविकता है, जिसे संपूर्णता में लाने का प्रयास नागार्जुन ने किया है । यही उनकी सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि है ।"[1]

निष्कर्ष

नये उपन्यासकारों में परिवेश की स्थिति अत्यन्त महत्वपूर्ण और केन्द्रवर्ती है । इन उपन्यासों में देशकाल, अथवा वातावरण आदि के विपक्षी के रूप में परिवेश नहीं उभरा है । प्रत्युत यह एक स्वतंत्र सत्ता के रूप में उभरा है । पश्चिमी औद्योगिक क्रांति, द्वितीय महायुद्ध तथा अपरिमित वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपलब्धियों की प्रखरता ने समस्त मनुष्य जाति की बौद्धिक मानसिक तथा सामाजिक चेतना को कुंठित एवं प्रताडित कर दिया है । भौतिक उपकरणों तथा परमाणु अस्त्रों की भयावहता और अमानवीय व्यवस्था की विभीषिका ने मनुष्य प्राणी को भयाक्रांत, फालतू, निरीह और असह्य कर दिया है । परिवेश की इस भयावहता ने संपूर्ण मानव जाति की संवेदनशीलता को क्षीण करके उसे अचेतन एवं बधिर कर दिया है । फलतः मनुष्य परिवेश के साथ समझौता कर निर्वाह करने की छटपटाहट लिए हुए है । नये उपन्यास में परिवेश से जूझता, संघर्ष करता

---

1. डा. बेचन - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास - पृ. 255

और उसके भीतर लड़ता हुआ मनुष्य उस समूची विद्रूपता एवं भयानकता को व्यक्त करता है जिसने क्रूर और अमानुष स्थिति को उभारा है ।

नये उपन्यास की समीक्षा करते हुए यह देखना होगा कि क्या साहित्यकार की भाषा बौद्धिकता, अनुभव तथा नयी प्रयोगधर्मिता से युक्त है और उसने औपन्यासिक संरचना के विकास में कहाँ तक सहायता प्रदान की है । उपन्यास की समीक्षा में इसकी भी चर्चा की जानी चाहिए कि अपने अनुभवों, कथनों तथा विचारों को बोधगम्य भाषा के माध्यम से उपन्यासकार कहाँ तक संप्रेषित कर सकता है । सहजता, संयोजन, व्यंग्यात्मकता, प्रतीकात्मक, बिम्बात्मकता, गहरी व्यंजना तथा विस्फोटन आदि भाषा की अनेक प्रकार की विशेषताओं का निर्वाह नया उपन्यासकार किस हद तक कर पाया है, यह भी परखना होगा । और अंत में उपन्यासकार की भाषिक संरचना ने उपन्यास की सर्जनात्मकता और कलात्मकता को क्या आयाम प्रदान किए हैं । इसका भी विचार करना अनिवार्य है ।